International Journal of Multidisciplinary Trends

E-ISSN: 2709-9369
P-ISSN: 2709-9350
www.multisubjectjournal.com
IJMT 2022; 4(2): 186-188
Received: 20-08-2022
Accepted: 25-10-2022

डॉ. संध्या गौतम
एसोसिएट प्रोफेसर, आर्य गर्ल्ज कॉलेज, अम्बाला छावनी, हरियाणा, भारत

Corresponding Author:
डॉ. संध्या गौतम
एसोसिएट प्रोफेसर, आर्य गर्ल्ज कॉलेज, अम्बाला छावनी, हरियाणा, भारत

भारतेन्दु हरिश्चंद्र की मानववादी चेतना

डॉ. संध्या गौतम

प्रस्तावना

पश्चिमी जगत में मध्यकालीन बोध को समाप्त करने में जिन विचारधाराओं ने विशेष योग दिया उसमें मानववाद एक प्रमुख विचारधारा है। मध्यकाल में धार्मिक घटाटोप के कारण समस्त मूल्यों का स्रोत किसी ना किसी दिव्य सत्ता को माना जाता था और मनुष्य को उस दिव्य प्रतिमान से गिरा प्राणी। मानववादियों ने इस मान्यता का तिरस्कार कर यह घोषित किया कि मनुष्य ही मनुष्य का प्रतिमान है। इसके लिए उन्होंने एक ओर मानवोपरि दिव्य सत्ता का निषेध किया तो दूसरी ओर अमानवीय यांत्रिकता का। इस प्रकार मानववाद की धारणा है कि मनुष्य में जो पाशविक है और जो दिव्य है, उन दोनों के बीच कुछ ऐसा है जो पूर्णतः मानवीय है।

जब पश्चिम में सत्यं, शिवं, सुन्दरं, स्वतंत्रता, समानता, भ्रातृत्व की यह धारणा (चेतना) व्याप्त हुई, उस समय भारत में दिव्य शक्तियों के प्रति उत्कट आस्था थी और मनुष्य उनके समक्ष स्वयं को शूद्र और नगण्य मानता था। परंतु 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में ही भारतीय चेतना में परिवर्तन के कुछ–कुछ लक्षण प्रकट होने लगे। फलतः मनुष्य को अपने स्वतंत्र अस्तित्व और अपनी महत्ता का बोध होने लगा और प्रबुद्ध लोगों ने दिव्य शक्तियों के संबंध में प्रश्न चिह्न लगाने की प्रवृत्ति प्रकट हुई। इस प्रकार भारत में मानववादी चिंतन प्रारंभ हुआ।[1] 19वीं शताब्दी में बंगाल नवजागरण का केंद्र बना। कोलकाता में एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना हुई। भारतीय नवजागरण में इस संस्था का महत्त्वपूर्ण योगदान है। जब भारतवासी अंधविश्वासों और रूढ़ियों से चिपके थें, तब अंग्रेजों ने सर्वप्रथम हमारा इतिहास लिखा। अंग्रेजों को अपनी शासन व्यवस्था सुचारू रूप से चलाने के लिए ऐसे लोगों की आवश्यकता अनुभव हुई, जो उनकी भाषा को समझ सके और उनकी सहायता कर सके। इसी उद्देश्य से कोलकाता में विलियम फोर्ट कॉलेज की स्थापना की गई। इसमें बंगला भाषा के साथ–साथ हिंदी भाषा का भी समुचित विकास किया गया। इस नवजागरण में ईश्वर चंद्र विद्यासागर, राजा राममोहन राय, रवीन्द्र नाथ ठाकुर आदि ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। बंगाल नवजागरण ने रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद जैसे स्वतंत्र चिंतकों को जन्म दिया। भारत में यह नवजागरण राष्ट्रीय, सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि सभी पहलुओं से जुड़ा था।

बंगाल नवजागरण ने सर्वप्रथम हिन्दी साहित्य को अत्यधिक प्रभावित किया। परिणामस्वरूप स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना कर धर्मसुधार संबंधी आन्दोलन चलाया। इस नवजागरण से प्रभावित होकर भारतेन्दु हरिश्चंद्र, बालमुकुन्द गुप्त, अम्बिकादत्त व्यास आदि साहित्यकारों ने हिन्दी साहित्य का निर्माण करना प्रारम्भ कर दिया।

नवयुग के अग्रदूत, हिन्दी साहित्य में आधुनिक युग का प्रवेश द्वार खोलने वाले, युग प्रवर्तक भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने भारतवासियों को पौराणिक परिवेश से बाहर निकाल, आधुनिक सोच प्रदान करने का कार्य किया। उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं के माध्यम से जन–जागृति का कार्य सम्पन्न किया। मुंशी प्रेमचंद ने प्रगतिशील लेखक संघ के पहले अधिवेशन में ''साहित्य का उद्देश्य'' विषय पर अपने भाषण में कहा कि– ''हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो– जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।''[2]

भारतेन्दु जी का साहित्य इस कसौटी पर खरा उतरता है, क्योंकि उसमें उच्च चिन्तन, स्वाधीनता का भाव, सौन्दर्य का सार, सृजन की आत्मा, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश विद्यमान है, जो आज भी भारतीयों में देश प्रेम, भाषा प्रेम, मानव प्रेम, संवेदना को जागृत करने में पूर्णतः सक्षम है। जो आज भी भारतीयों को गतिशील बनने की प्रेरणा देता है।

भारतेन्दु हरिश्चंद्र जी का साहित्य वास्तव में मानववादी चेतना का संवाहक है। उनकी राष्ट्रीय भावना में कट्टरता न होकर उदारता थी। उन्होंने भेदभाव की नीति का सदैव विरोध किया। वे हिन्दू और मुसलमान दोनों को समान रूप से स्वीकार करते थे। उनकी रचना ''उर्दू स्यापा'' के आधार पर कुछ आलोचकों ने उन्हें मुसलमान विरोधी सिद्ध करने का प्रयास किया, परन्तु यह सत्य नहीं है। यदि वे इस्लाम विरोधी होते तो हिन्दू धर्म के पक्षधर स्वामी दयानंद सरस्वती के विचारों का विरोध क्यों करते। वे कहते हैं–

खण्डन जग में काके कीजै,
सबमत तो अपने ही है,
इनको कहा उत्तर दीजै।

वे हिन्दू–मुसलमान दोनों को एक शरीर के दो अंग मानते थे। उन्होंने अनुभव किया कि देशवासी केवल पेट भरने को ही अपने जीवन का लक्ष्य मान बैठे हैं, देश का धन विदेशों में जा रहा है, लेकिन कोई भी भारतवासी सजग नहीं है। वे लिखते हैं–

भीतर–भीतर सब रस चूसै,
हंसि–हंसि के तन मन धन मूसै।
जहिर बातन में अति तेज,
क्यों सखि सज्जन नहि अंग्रेज।

अपने काव्य के माध्यम से जहाँ उन्होंने भारतवासियों को जागरूक किया, वहीं उन्होंने ब्रिटिश शासन की शोषणपूर्ण नीति का विरोध भी किया।भारतेन्दु जी की सोच वैज्ञानिक और तार्किक है। वे अंग्रेजों की अमानवीय नीतियों का तो विरोध करते हैं, लेकिन उनके आने से भारत की परिस्थितियों में जो बदलाव आया उसके लिए ''बादशाह दर्पण'' में वे अंग्रेजों को धन्यवाद देते हैं – अंग्रेजों के आगमन से हिन्दुओं को मुसलमानों के अत्याचारों से मुक्ति मिल। यथा– ''जो कुछ हो मुसलमानों की भाँति इन्होंने हमारी आंख के सामने हमारी देवमूर्तियां नहीं तोड़ी और स्त्रियों को बलात्कार से छीन नहीं लिया, न घास की भांति सिर काटे गए और न जबरदस्ती मुंह में थूक कर मुसलमान किए गए। अभागे भारत को यही बहुत है। ...भारत कृतघ्न नहीं है। वह सदा मुक्त कंठ से स्वीकार करेगा कि अंग्रेजों ने मुसलमान के कठिन दंड से हमको छुड़ाया।''[3]
बलिया में दिए अपने व्याख्यान में उन्होंने कहा– ''अंग्रेजों ने जो अनुकूल परिस्थितियां दी हैं, वैज्ञानिक दृष्टिकोण दिया है, जो भौतिक मशीनें उपलब्ध करवाई उनका लाभ उठा कर हमें अपनी उन्नति करनी चाहिए। ...सब प्रकार के सामान पाकर अवसर पाकर भी हम लोग जो इस समय उन्नति न करें तो हमारा केवल अभाग्य। जो लोग अपने को देश का हितैषी मानते हैं। वह अपना सुख होम करके, अपने धन और मान का बलिदान करके कमर कस के उठो। देखा–देखी थोड़े दिन में सब हो जाएगा।''[4]
जहां उन्होंने अंग्रेजों की प्रशंसा की, वहीं अपने देशवासियों को कर्म, संघर्ष और त्याग करने के लिए प्रेरित किया। उस समय बाल–विवाह, अनमेल विवाह, छुआछूत, जाति प्रथा जैसी अनेक रूढियां समाज को खोखला कर रही थी, ऐसे समय में आडम्बरहीन राष्ट्रीय धर्म की आवश्यकता थी। ऐसी विषम परिस्थितियों में भारतेन्दु जी एक प्रतिनिधि साहित्यकार के रूप में उभरकर आए। उन्होंने देश की अवनति के कारणों में कर्महीनता, आलस्य, भाग्यवाद, नशाखोरी, बेरोजगारी जैसी समस्याओं को पाया और अपने काव्य, नाटकों और निबंधों में उन पर करारे व्यंग्य किए। उन्होंने एक मुकरी में बेरोजगारी के विषय में लिखा है–

एक बुलाओ चौदह आवै, निज–निज विपदा रोय सुनावै।
भूखो मरे भरे न पेट, क्यों सखि सज्जन नहिं ग्रेजुएट।[5]

इसी प्रकार उन्होंने शराब के विषय में लिखा है कि जब वह एक बार मुंह लग जाए तो छूटती नहीं है, जाति, मान, धन सब कुछ लूट लेती है और व्यक्ति को पागल बना देती है। जाति समस्या को भी भारतवर्ष की अवनति का मुख्य कारण मानते हुए उन्होंने ''भारत दुर्दशा'' नाटक में लिखा है–

जाति अनेकन करी नीच और ऊँच बनाओ।
खान–पान संबंध–सबन तो बरजि छुड़ाओ।[6]

इसी जाति प्रथा ने छुआछूत की समस्या को जन्म दिया। जिसने मानव को मानव का विरोधी और घृणापात्र बना दिया। ऊँच जातियों की दोहरी नीति पर भारतेन्दु जी ने ''सबै जाति गोपाल की'' नाटक में करारा व्यंग्य किया। इसमें उन्होंने चित्रित किया है कि एक पंडित जी चमार को ब्राह्मण कैसे बनाते हैं। यथा ''हाँ चमार तो ब्राह्मण हैं, इसमें क्या सन्देह है, ईश्वर के चर्म से उसकी उत्पत्ति है। ...चमार में तीन अक्षर होते हैं। 'च' से चारो वेद, 'म' से महाभारत, 'र' से रामायण – जो इन तीनों को पढ़ावै वह चमार।''[7]
बुद्धि के साथ–साथ उनकी संवेदनशीलता उन्हें मानवीयता के चरम शिखर पर पहुंचा देती है। 1874 में 'कविवचनसुधा' में प्रकाशित 'बकरी–विलाप' कविता में उन्होंने लिखा है कि बंगाल में देवी पूजन के समय घर–घर में आनंद और उल्लास छाया है, लेकिन देवी को बलि चढ़ाई जाती है, उस पर एक बकरी किस प्रकार विलाप करती है–

जिनके सिसु हवै के मरे ते जानहि यह पीर।
बांझ गरभ की बेदना जाने कहा सरीर।।[8]

धर्म के नाम पर होने वाले अत्याचारों का मनुष्य की संवदेहीनता को उन्होंने अमानवीय करार देते हुए देश की अवनति का कारण माना है। भारतेन्दु जी ने अपने बलिया में दिए व्याख्यान में कहा है कि – ''धर्म से संबंधित मूल दृष्टि में दोष आने से ही गौण कर्म तो मुख्य हो गए और मुख्य वस्तु गौण हो गई। इसी से भारतवर्ष भगवद्विमुख होकर छिन्न–भिन्न हो गया।''
स्वदेशी और स्वतंत्रता पर बल देते हुए उन्होंने युवाओं को देशवासियों को कर्म और प्रेम का महामंत्र दिया। उन्होंने अपने बलिया भाषण में भारतवासियों को जागृत करते हुए कहा –''हाय अफसोस तुम ऐसे हो गए हो कि अपने निज के काम की वस्तु भी नहीं बना सकते। भाइयों, तो नींद से चौंको। अपने देश की सब प्रकार उन्नति करो। जिसमें तुम्हारी भलाई हो, वैसी ही किताब पढ़ो, वैसे ही खेल खेलों, वैसी ही बातचीत करो। परदेशी वस्तु और परदेशी भाषा का भरोसा मत रखो। अपने देश में अपनी भाषा में उन्नति करो।''[9]
भारतेन्दु जी का विचार था कि मातृभाषा का प्रयोग करने से ही राष्ट्रीय गौरव में वृद्धि होती है। व्यक्ति, समाज और देश का विकास होता है। यथा –

निजभाषा उन्नति अहै, सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।[10]

यहां निज भाषा से तात्पर्य हिन्दी भाषा से है। वे निज भाषा को किसी भी शास्त्रीय और प्रशासनिक भाषा से अधिक महत्त्व देते थे। यथा –

अंग्रेजी पढ़ि जदपि सब गुण होत प्रवीण।
पै निज भाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन।[11]

इसी प्रकार उन्होंने संस्कृत भाषा जो उस समय लोकभाषा नहीं थी, उसकी स्थिति कूप मंडूक की हो गई थी। जनता उसे समझती नहीं थी, उसके विषय में कहते हैं–

पढ़े संस्कृत जतन कर, पंडित में विख्यात।
पै निज भाषा ज्ञान बिन कहि न सकत एक बात।[12]

मुंशी प्रेमचंद ने साहित्यकार के गुणों के विषय में लिखा है– ''जिन्हें धन वैभव प्यारा है, साहित्य मन्दिर में उनके लिए स्थान नहीं है। यहां तो उन उपासकों की आवश्यकता है, जिन्होंने सेवा को ही अपने जीवन की सार्थकता मान लिया हो। जिनके दिल में दर्द की तड़प और मुहब्बत का जोश हो। अपनी इज्जत तो अपने हाथ है। अगर हम सच्चे दिल से समाज–सेवा करेंगे, तो मान, प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि सभी हमारे पांव चूमेंगी।''[13]

भारतेन्दु जी पर यह पंक्तियां खरी उतरती हैं। धन–धान्य से भरपूर होने पर भी उन्होंने अपनी संपत्ति साहित्य और शिक्षा को समर्पित कर दी। उन्होंने महाराज बनारस के समझाने पर कहा– ''यह दौलत मेरे कितने ही पुरखों को निगल गई, अब मैं इसे खाऊँगा।''[14] अनेक यात्राएं कर उन्होंने जो लोक–अनुभव प्राप्त किए, भारत को जाना, लोगों के जीवन को परखा अपने संवेदनशील सृजनशीलता से उसे सजीवता प्रदान की। सृजन और संवाद की प्रक्रिया को कहीं भी दबने नहीं दिया। उनके नाटकों ने समाज में जो हलचल मचाई उससे प्रमाणित होता है कि वे जन–जन के कितने करीब थे। अपने समकालीन साहित्यकार साथियों की आर्थिक सहायता कर उन्हें भी आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। उनकी इसी मानववादी चेतना के विषय में डॉ. राम विलास शर्मा ने लिखा– ''यह बिना अत्युक्ति कहा जा सकता है कि भारतेन्दु की आत्मा प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट आदि समर्थ लेखकों को उद्दीप्त करके देश और साहित्य की सेवा करती रही।''

अंत में कहा जा सकता है कि भारतेन्दु हरिश्चंद्र का साहित्य आज भी मानववादी और प्रगतिशील तत्त्वों से ओत–प्रोत होने के कारण सभी के लिए प्रेरणास्रोत हैं। वर्तमान की विषम परिस्थितियों में जब भी समाज जागृति या देश उन्नति की बात आती है, तो भारतेन्दु जी का साहित्य मानव उन्नति, देश उन्नति हेतु कर्मशीलता, सत्य, न्याय, वैज्ञानिकता का पाठ पढ़ाता है। भारतेन्दु जी ने देश और समाज की ऐतिहासिक–सामाजिक नब्ज को पहचाना, उसके रोग को जाना और उसका अपने कार्यों, हिन्दी भाषा और साहित्य द्वारा निवारण किया। उन्होंने सदैव देश हित हेतु कार्य किया, अहम् तुष्टि हेतु नहीं। यही कारण है कि कवि निराला ने उनकी जन्मशती उत्सव पर दिए भाषण में कहा था कि मैं तो उनके दरबार का दरबान हूं। वास्तव में उनके समग्र साहित्य में स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व की मानववादी गूंज सुनाई देती है।

संदर्भ

1. गौतम संध्या, अमृतलाल नागर के उपन्यासों में मानववाद, भूमिका, सूर्य भारती प्रकाशन, नई सड़क, दिल्ली, 2003
2. प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, पृ. 18, एस.के. पब्लिशर्ज, नई दिल्ली, 1988
3. शर्मा हेमन्त (सं0), ''भारतेन्दु समग्र'' ग्रंथावली, पृ. 256, प्रचारक ग्रंथावली परियोजना, हिन्दी प्रचारक संस्थान, पी.बी. 1206, पिशाचमोचनी, वाराणसी। वही 7332
4. 'भारतेन्दु समग्र', पृं 1010
5. वही, पृ. 256
6. वही, पृ. 256
7. वही, पृ. 542
8. वही, पृ. 216
9. वही, पृ. 1013
10. वही, पृ. 228
11. वही, पृ. 228
12. वही, पृ. 228
13. प्रेमचंद, साहित्य का उद्देश्य, पृं. 17
14. वही, पृ. 108